International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

'जूठन': सामाजिक यथार्थ की गाथा

कपिल कुमार गौतम (एम.फिल. हिंदी)

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,

बारला, रायसेन (म.प्र.)

मो. 08267887301, 9131829723

ईमेल- Kapilkumargautam1@gmail.com

'ओमप्रकाश वाल्मीकि' जी ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' मे जीवनगत अनुभवों के माध्यम से भारतीय समाज के क्रूर सत्य को अभिव्यक्त किया है। जाति व्यवस्था वास्तव में भारतीय समाज के लिए एक अभिशाप है। जिसने भारतीय समाज को कई हिस्सों में वर्गीकृत कर दिया है। यह शुद्ध रूप से वर्गीकरण सम्बद्ध शोषण की एक व्यवस्था है। जिसने ज्यादा श्रम करने वालों को निम्न और कम श्रम करने वालों को उच्च वर्ग का दर्जा प्रदान किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की आत्मकथा 'जूठन' भी इसी व्यवस्था की पीड़ा से उपजी एक गाथा है। 'जूठन', निम्न जाति में जन्मे 'वाल्मीकि' जी के जातिगत उत्पीड़न और संघर्ष का आख्यान है।

'वाल्मीकि' जी की साहित्यिक यात्रा का प्रारंभ 'सदियों का संताप' काव्य संग्रह से हुआ। बाद में उनके दो काव्य संग्रह 'बहुत हो चुका' तथा 'अब और नहीं' प्रकाशित हुए। इन काव्य संग्रहों में निहित वेदना के आधिक्य को इनके शीर्षक से ही अनुभूत किया जा सकता है। 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' जी ने अस्सी के दशक में अपनी लेखनी के माध्यम से भावनाओं को अभिव्यक्त करना प्रारंभ कर दिया था। उनका साहित्यिक सृजक मन सौंदर्य एवं प्रेम की कल्पनाओं के विस्तृत आकाश में उड़ान भरने की अपेक्षा समाज के कष्टप्रद यथार्थ को शब्दांकित करने में अधिक रमा।

*हिंदी साहित्य में उन्हें सन् 1997 ई. में रचित आत्मकथा 'जूठन' से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। 'जूठन' की पूर्वपीठिका सन् 1994 ई. में ही तैयार हो चुकी थी। जब 'राजकिशोर' द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हरिजन से दलित' में 'वाल्मीकि' जी का लेख 'एक दलित की आत्मकथा' प्रकाशित हुआ। 'वाल्मीकि' जी ने इस लेख के माध्यम से अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में भोगी हुई यातनाओं एवं पीढ़ाओं को संक्षिप्त एवं सारगर्भित रूप में अभिव्यंजित किया था। जातिवाद के दंश से उपजी इस पीड़ा को दलित एवं उपेक्षित वर्ग के पाठकों ने आत्मभोगी पीड़ा के रूप में अंगीकार किया। 'जूठन' की भूमिका में 'वाल्मीकि' जी लिखते हैं कि- "**दलित वर्ग के पाठकों को उन पृष्ठों में अपनी पीड़ा दिखाई दे रही थी। सभी का आग्रह था, मैं अपने***

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

अनुभवों को विस्तार से लिखूं ।"[1] इसी से 'वाल्मीकि' जी को आत्मकथा लिखने की प्रेरणा मिली एवं स्मृतियों में समाहित तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं और प्रताड़नाओं को एक बार फिर उन्हें जीना पड़ा ।

दलित आत्मकथा लेखन की परम्परा में 'जूठन' का अपना विशिष्ट स्थान है । इसकी विशिष्टता इसमें वर्णित सामाजिक यथार्थ से उपजी पीड़ा में निहित है । 'वाल्मीकि' जी ने 'जूठन' में जीवन के अनुभवों को उन्मुक्त हृदय से अभिव्यक्त किया है । उनका उद्देश्य भूमिका की प्रथम पंक्तियों में ही स्पष्ट हो जाता है, वे लिखते हैं- **"दलित जीवन की पीड़ाएं असहनीय और अनुभव दग्ध हैं । ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके । एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने सांसे ली हैं, जो बेहद क्रूर और अमानवीय हैं । दलितों के प्रति संवेदनशील भी ।"**[2] सदियों से भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग जातिवाद के कारण प्रत्येक क्षेत्र में उपेक्षित रहा है । भारतीय साहित्य की लम्बी परम्परा में भी इस वर्ग की संवेदनाओं को उचित स्थान नहीं मिला । बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में जाकर दलितों की संवेदनाओं को साहित्य में स्थान मिलना प्रारंभ हुआ और एक नूतन साहित्यिक विमर्श, 'दलित विमर्श' का प्रारंभ हुआ ।

'जूठन' के लेखन से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दलित साहित्य की वैकासिक परम्परा में अपना स्थान सुनश्चित किया । 'जूठन' में वर्णित 'वाल्मीकि' जी की पीड़ा व्यैक्तिक होते हुए भी समष्टि पीड़ा का स्वरूप धारण करती है । इसी कारणवश दलित साहित्य की यह विशेष रचना दलित एवं उपेक्षित वर्ग के साथ- साथ गैर दलित समाज में भी काफी लोकप्रिय हुई ।

देश स्वतंत्र होने के बाद भी समाज की सोच जातिगत भेदभावों से स्वतंत्र न हो पाई । आजाद भारत में जन्में वाल्मीकि जी ने विकराल जातिवाद एवं कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण जीवनभर संघर्ष किया । चूँकि इनके पिता मानते थे कि शिक्षा से ही जाति सुधर सकती है इसलिए जातिगत हीनता से उबर कर इनके पिता ने इनका दाखिला गाँव के ही प्राथमिक विद्यालय में कराया । भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर से बढ़कर माना गया है । किन्तु शिक्षकों द्वारा बालक ओमप्रकाश को जातिवाद के सांचे में ढाल कर ही देखा गया । शिक्षार्थ गये बालक ओमप्रकाश को पूरे विद्यालय में कई दिनों तक सिर्फ इसलिए झाड़ू लगानी पड़ी क्योंकि वे उस जाति से थे जिसकी सैंकड़ों पीढ़ियां सफाई का काम करती आ रहीं थी । विद्यालय के हेड मास्टर 'कलीराम' कहते हैं- **"पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा । तेरा तो यो खानदानी काम है । जा... फटाफट लग जा काम पे ।"**[3]

'वाल्मीकि' जी को विद्यालय से भगाने के लिए विद्यार्थियों एवं शिक्षकों द्वारा तमाम हथकंडे अपनाएं गये । शिक्षकों द्वारा बार-बार उन्हें उनकी जाति का अहसास दिलाया जाता था । किन्तु उनकी एवं परिवार की दृढ़ इच्छा शक्ति ने उन्हें शिक्षा के लिए लगातार प्रेरित किया । विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक उतार-चढ़ावों से संघर्ष करते हुए

[1] वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन (पहला खंड), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संकरण 2017 ई., पृ.सं. 08
[2] वही, पृ.सं. 07
[3] वही, पृ.सं. 15

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

'वाल्मीकि' जी किसी तरह कक्षा 12 में पहुंचे। किन्तु जातिवाद का राक्षस वहाँ भी सामने खड़ा मिला और कक्षा 12 की प्रयोगात्मक परीक्षा में जातिगत भेदभाव के कारण उन्हें फेल कर दिया गया। आगे की पढ़ाई करने के लिए बड़े भाई के पास देहरादून चले गये। वहाँ पर पुन: कक्षा 11 में प्रवेश लिया और इसी दौरान सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में भी इनको रूचि होने लगी। यहीं पर उन्होंने पढाई बीच में छोड़कर ऑर्डिनेंस फैक्टरी देहरादून में प्रवेश ले लिया। जहाँ से एक वर्ष के प्रशिक्षण के पश्चात प्रतियोगात्मक परीक्षा उत्तीर्ण करके वाल्मीकि जी का चयन आर्डिनेंस फैक्टरी जबलपुर में हो गया। जबलपुर में भी जातिवादी मानसिकता के लोगों से 'वाल्मीकि' जी का साक्षात्कार हुआ। किन्तु उन्होंने अपने भविष्य को ध्यान में रखते हुए कोई प्रतिकार न करना ही ठीक समझा। यहाँ रहकर वैचारिकी विकसित हुई और साहित्यिक गतिविधियों से भी जुड़ गये। 'वाल्मीकि' जी का साहित्य के प्रति नजरिया विकसित होने लगा था और उस नजरिये को सम्पूर्णता मुंबई जाकर प्राप्त हुई। आर्डिनेंस फैक्टरी बम्बई में चयन हो जाने के पश्चात ओमप्रकाश वाल्मीकि जी महाराष्ट्र की दलित चेतना एवं बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के विचारों के संपर्क में आये। बम्बई में ही दर्शक दीर्घा में बैठ कर रंगमंच देखते-देखते, वाल्मीकि जी नाट्य कलाकार एवं नाट्य लेखक बन गए और कालान्तर में एक नाट्य मण्डली भी बना ली। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर संघर्ष करते हुए संकुचित सोच से आबद्ध लोगों के एक छोटे से गाँव से निकल कर वाल्मीकि जी ने हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

'जूठन' सामाजिक व्यवस्था पर कई बड़े प्रश्न दागती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी उन प्रश्नों के उत्तर नहीं देते और न ही उत्तरों को ढूँढने का प्रयत्न करते हैं। वे तो बस निडर होकर सच कहते जाते हैं, इसी कारणवश 'जूठन' का पाठक भी प्रश्नों के घेरे में आकर खड़ा हो जाता है। अब चाहे वह पाठक तथाकथित उच्च वर्ग का हो या निम्न वर्ग का।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण करना होता है किन्तु जब शिक्षक, शिक्षक मात्र न रह कर जातिवाद के पोषक बन जाते हैं तो शिक्षा निरर्थक हो जाती है। अध्यापक 'वाल्मीकि' जी के हाथों से सिर्फ इसलिए पानी पीना नहीं चाहते क्योंकि 'वाल्मीकि' जी की जाति 'चूड़हा' है। इसी कारणवश उन्हें सहपाठी भी अपने पास नहीं बैठाते हैं। स्कूल आते-जाते समय भी तथाकथित उच्च जाति के लड़के परेशान करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में वाल्मीकि जी अपने पिता की बेबसी कभी नहीं भूल पाये। जो कहते थे **"अबे सोहरे म्हारे जाकत दो अच्छर सीख लेंगे तो थारा क्या बिगड़ जागा।"**[4] श्रेष्ठ सभ्यता एवं संस्कृति के सारे दावें खोखले तथा व्यर्थ नजर आते हैं, जब इन्सान ही इन्सान के साथ जानवरों जैसा व्यवहार करता है।

'रामस्वरूप चतुर्वेदी' जी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य एवं संवेदना का विकास' में लिखते हैं कि 'भारतीय समाज में प्रत्येक जाति अपने से नीची जाति ढूंढ लेती है।' चतुर्वेदी जी के इस कथन की पुष्टि भी वाल्मीकि जी के जीवनगत अनुभवों के क्रम में हो जाती है। स्कूल की वेशभूषा पर इस्तरी कराने के लिए गए 'वाल्मीकि' जी को

[4] वही, पृ.सं. 41

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

धोबी यह कह कर लताड़ कर भगा देता है कि "**हम चूहड़े-चमारों के कपड़े नहीं धोते, न ही इस्तरी करते हैं** ।"[5] अजीब दुविधा होती थी, साफ-सुथरे कपड़े पहन कर स्कूल जाते तो लड़के कहते- "**अबे चूहड़े का, नए कपड़े पहन कर आया है** ।"[6] मैले पुराने कपड़े पहन कर स्कूल जाते तो कहते "**अबे चूहड़े के, दूर हट, बदबू आ रही है** ।"[7] वाल्मीकि बस्ती के किसी भी व्यक्ति के प्रति, किसी के भी मन में सम्मान का कोई अर्थ न था । कोई भी आता डरा धमकाकर चला जाता था ।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास में 'प्रेमचंद' ने बेगारी की जिस भीषण समस्या को उठाया है, वास्तविक जीवन में 'वाल्मीकि' जी ने उसे भोगा है । दलित समाज के सभी लोगों को समय-समय पर तगाओं के लिए बेगारी करनी पड़ती थी । स्वयं वाल्मीकि जी को हाईस्कूल की परीक्षाओं के दौरान बेगारी करनी पड़ी । गणित की परीक्षा से एक दिन पूर्व वाल्मीकि जी को पढ़ाई करता हुआ देख 'फौजा त्यागी' ने डांटते हुए कहा "**अबे चूहड़े, ये क्या कर रहा है ?.... रात को पढ़ लियो... अब मेरे साथ चल ईख बोना है**"[8] और डरा धमकाकर बांह पकड़ कर खींचते हुए ले गया । प्रसिद्ध दलित साहित्यकार 'मोहनदास नैमिशराय' सामंतों द्वारा होने वाले अत्याचार और शोषण के पश्चात पलायन की जो कथा '**अपना गाँव**' कहानी में गढ़ते हैं, ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यथार्थ में उन प्रसंगों से सरोकार हुआ । जातिवाद के दंश और पीड़ा के असहनीय हो जाने पर वाल्मीकि जी के गाँव से लोगों ने पलायन किया था । इसी कारण साहित्य में ग्राम्य जीवन के मनोहारी वर्णन पर भी वाल्मीकि जी प्रश्नचिन्ह लगाते हैं- "**स्कूल में पढ़ाई गई 'सुमित्रानंदन पंत' की कविता 'आह ! ग्राम्य जीवन भी क्या...' के एक-एक शब्द घोर बनावटी और झूठे साबित हुए थे** ।"[9] 'जूठन' में वाल्मीकि जी यह भी स्पष्ट करते हैं कि दलित समाज के लोग इस अत्याचार का विरोध इसलिए नहीं कर पाते थे क्योंकि लगभग प्रत्येक दलित परिवार शोषक वर्ग के कर्ज से दबा हुआ था । सभी की आर्थिक स्थिति बहुत ख़राब थी । रोटी, कपड़ा, मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु परिवार का प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ काम करता था किन्तु फिर भी जरुरी आवश्यकताएं भी पूरी न हो पाती थी ।

दलित समाज में अनेक ऐसी परम्पराएं एवं अन्धविश्वास व्याप्त थे । जिनके बन्धनों की जकड़न ने इनका स्वाभिमान एवं अस्मिता को समाप्त ही कर दिया था । किन्तु 'जूठन' बंधनों की उन बेड़ियों को तोड़कर दलितों में एक नई चेतना का प्रसार करती है । विवाह के समय 'सलामी की प्रथा' को वाल्मीकि जी ने अपने बड़े भाई के विवाह में ही समाप्त करा दिया था । जिस पर उनके पिता ने गर्व से कहा "**मुंशी जी, बस तुझे स्कूल भेजना सफल हो गिया है** ।"[10] जातिवाद एवं शोषण के आधिक्य के कारण दलित समाज में ईश्वर एवं धर्म के प्रति भी अनास्था का भाव उत्पन्न

[5] वही, पृ.सं. 29
[6] वही, पृ.सं. 13
[7] वही, पृ.सं. 13
[8] वही, पृ.सं. 73
[9] वही, पृ.सं. 52
[10] वही, पृ.सं. 45

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

हुआ । वाल्मीकि जी स्पष्ट शब्दों में वेद-पुराणों सहित हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रंथों की आलोचना करते हैं- **"किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया ? किसी भी महाकवि ने हमारे जीवन पर एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा ।"**[11] हिन्दू धर्म में पूजनीय देवी-देवताओं को वे मात्र एक पत्थर मानते हैं- **"पत्थर की इन मूर्तियों में मेरी कोई आस्था नहीं है ।**[12]

'वाल्मीकि' जी को जाति एवं आर्थिक तंगहाली के अतिरिक्त 'वाल्मीकि' सरनेम से भी दंश मिले । 'ओमप्रकाश' नाम के उत्तरार्ध में लिखा 'वाल्मीकि' कुछ लोगों को अद्भुत, आकर्षक एवं नवीन चेतनामय लगा । 'वाल्मीकि' जी अपने इस सरनेम को अपने सम्पूर्ण जीवन के संघर्षों और सरोकारों का साथी मानते हैं । वे कहते हैं- **'ओमप्रकाश' पर यह 'वाल्मीकि' कुछ भारी पड़ने लगा है ।"**[13] किन्तु परिवार, रिश्तेदारों सहित स्वयं उनकी पत्नी ने भी कभी उनका ये सरनेम आत्मसात नहीं किया ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी आत्मकथा की सृजना में कहीं भी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं हैं । 'जूठन' में अतिश्योक्ति अथवा बनावटीपन भी नहीं है । जो भी उन्होंने भोगा है, उसको कलात्मक ढंग से निस्संकोच अभिव्यक्त कर दिया । 'जूठन' की संरचना में 'वाल्मीकि' जी ने अपने जीवन के यथार्थ को उकेरा है । उस यथार्थ में समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के प्रति एक आक्रोश है । किन्तु उस आक्रोश में भी 'वाल्मीकि' जी उन व्यक्तियों और प्रसंगों का उल्लेख सहज ढंग से करते हैं, जिन्होंने जाति को नहीं व्यक्ति को महत्व दिया । 'वाल्मीकि' जी ने सकारात्मक और नकारात्मक सभी पक्षों का सामंजस्य इस कृति में बैठाया है ।

अपनी आत्मकथा में वाल्मीकि जी अगर प्राथमिक विद्यालय में तीन दिनों तक झाड़ू लगवाने वाले अध्यापक 'कलीराम त्यागी' का उल्लेख करते हैं । तो वहीं 'बाबूराम त्यागी' जैसे एक अच्छे शिक्षक को प्रेरक एवं मार्गदर्शक भी स्वीकार करते हैं । वाल्मीकि जी 'सुखदेव सिंह तगा' का उल्लेख करते हैं, जिसकी बेटी की शादी में वाल्मीकि जी के माता-पिता ने दस-बारह दिनों तक घर एवं बाहर के अनेक काम किए, किन्तु उसने शादी के दिन जूठन देकर उन्हें अपमानित किया । तो साथ ही 'मामराज तगा' का भी उल्लेख करते हैं । जिन्होंने, 'वाल्मीकि' जी के परिवार सहित बस्ती के कई अन्य परिवारों को भी बरसात के दिनों में अपने घर में आश्रय दिया । हाईस्कूल की परीक्षा के दौरान 'फौजा त्यागी' द्वारा जबरन खेत में बेगारी के लिए ले जाने के प्रसंग का उल्लेख करते हैं, तो वहीं परीक्षा पास होने पर 'चमनलाल त्यागी' द्वारा दी गई बधाई और घर ले जाकर पास बैठकर कराये गए भोजन का भी उल्लेख करते हैं । **"चूहड़े के जाकत कू झाड़ू लगाने कू कह दिया तो कोण सा जुल्म हो गया"**[14] जैसे अमानवीय संवादों को स्थान देते हैं । तो 'सगवा प्रधान' के सांत्वना एवं

[11] वही, पृ.सं. 34
[12] वही, पृ.सं. 115
[13] वही, पृ.सं. 152
[14] वही, पृ.सं. 09

*सहयोगपूर्ण संवादों का भी उल्लेख करते हैं, जिनमें वाल्मीकि जी के पिता को उन्होंने कहा "**फिकर ना कर, कल मदरसे में इसे भेज देणा** ।"*[15]

वास्तव में 'जूठन' को पूर्ण रूप से संतुलित कृति कहा जा सकता है । जो कथावस्तु की दृष्टि से जितनी भिन्न है, भाषा शैली की दृष्टि से उतनी ही श्रेष्ठ भी है । 'जूठन' की भाषा शुद्ध सरल खड़ी बोली हिंदी है । जो पात्र तथा प्रसंग के सर्वथा अनुकूल है । भाषा की कसावट रचना को विशिष्ट बनाती है । हिंदी दलित साहित्य में 'जूठन' एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकृत है ।

[15] वही, पृ.सं. 09